दश वाद और ब्रह्मसिद्धान्त

डॉ. प्रवीण पण्ड्या
जालोर

(गतांक से आगे)

यदृच्छावाद कारण-कार्य भाव की कल्पना को ही अस्वीकार करता है—

भ्रान्तोसि यत्कारणकार्यभावं प्रकल्पसे भूरिविलोकनेन ।
मृद्भ्यो जलं स्याज्जलतो मृदुः स्युः किमत्र कार्यं वद कारणं वा ।।

अतर्कितोपनतमस्ति सर्वं चित्रं जनानां सुखदुःखजातम् ।
काकस्य तालेन यथाभिघातो न बुद्धिपूर्वोस्ति वृथाभिमानः।।

व्योम्नि प्रसन्ने प्रभवन्ति मेघा मेघे प्रसन्ने तडितोप्यकस्मात् ।
अस्त्यद्य निर्वातमथ प्रवातं लौहाश्मसर्पा अपि खात् पतन्ति ।।

न कारणं कार्यमिहास्ति तस्मादिदं कुतो नेति न शङ्कनीयम् ।
अतर्कितं भावय यद्यथेदं यदृच्छयैवेदमुदेति सर्वम् ।।[1]

नियतिवाद है—

पुरा तिलात् तैलमजायतैवं तज्जायतेऽद्यापि जनिष्यते च।
अत्रापि जातं बहुदूरदेशान्तरेपि तत् तद्वदुपैति जन्म।।[2]

अपरवाद का एक अन्य वाद प्रकृतिवाद है। यह वैदिक प्रकृतिवाद बाद में सांख्य के नाम से जाना गया। पञ्चशिख और आसुरि का यह मत है। इसमें पर के रूप में पुरुष को माना गया है और वह गुणमयी प्रकृति का आश्रय है। यहाँ प्रश्न उठता है कि ओझा जी अपर प्रकृति के साथ पर पुरुष को मानने वाले प्रकृतिवाद या सांख्य को अपरवाद के भीतर क्यों रखते हैं। इस प्रकृतिवाद की मान्यता है कि इस पुरुष या आत्मा में काल, स्वभाव और कर्म आकस्मिक रूप से उत्पन्न हो जाते हैं—

यदृच्छयात्मन्युपपद्यते पुनः कालः स्वभावोऽपि च कर्म च त्रयम्।
कालाद् गुणानां भवति व्यतिक्रिया स्वभावतस्तत्परिणामवृत्तयः।।[3]

गुण की परिभाषा है, निर्विशेष को विशिष्ट बनाना—स निर्विशेषस्य विशेषकृद् गुणः। यह वाद पर की स्थापना करके भी अन्ततः स्वभाव को प्रतिष्ठित करता है।

पाँचवाँ आवरणवाद पदार्थवाद या वस्तुवाद है। वस्तु की यहाँ ज्योति, यज्ञ और वयुन—इन तीन भागों में व्याख्या की गयी है। वयुन, वयोनाध और वय—ये तीन वैदिक शब्द यहाँ अपना अर्थ प्रकट करते हैं। वस्तु की सीमा वयोनाध है। इसे छन्द भी कहा जाता है। जिससे वस्तु का भार होता है, वह वय है। वस्तु का विज्ञान वयुन है। वस्तु की स्वतः प्रकाशता, परतः प्रकाशता और रूप प्रकाशता उसकी ज्योति है। पदार्थ का पदार्थान्तर होना उसका यज्ञ है—वाचो मनस्तन्मनसः पुनर्वाक् प्रवृत्त इत्थं क्रम एव यज्ञः। आवरणवाद का मत है कि यहाँ जो कुछ दिखायी पड़ रहा है, वह अलग अलग के तरह के यज्ञ हैं।

अम्भोवाद छठा वैदिकवाद है। यह आवरणवाद से सूक्ष्मतर या बृहत्तर पदार्थवाद है। अम्भः पदार्थ की सूक्ष्म या बृहद् स्थिति है। त्रिवृतात्मक जगत् जिसके भीतर है और जो इस त्रिवृतात्मक जगत् से बाहर है, वह अम्भः है। अम्भः के भृगु और अङ्गिरा—दो भेद हैं। इस अम्भः की विभिन्न गति और तनुता-घनता ही सृष्टि है। अम्भोवाद जगत् को सीमित और अम्भः को असीमित मानता है। इसकी मान्यता है कि जिसे ब्रह्म कहा जाता है, वह यह अम्भः है—किं ब्रह्म नामेति विचारणायां न त्वम्भसोन्यत्परितर्कयामि। यह अम्भः वह है, जो पूरे ब्रह्माण्ड को समुद्र के रूप में घेरे हुए है—

समुद्रतोऽजायत एष सूर्यस्तत्रैव संतिष्ठत एष पश्चात्।
अर्वाक् च सूर्यात् परतस्तथापो दृश्यन्त आपोमयमस्ति विश्वम्।।[4]

वेद में समुद्र के बहुत से वर्णन इसी अम्भोमय समुद्र से सम्बन्ध रखते हैं। अम्भोवाद की वैदिक दृष्टि को संक्षेप में इतना ही कहा जा सकता है, जबकि पण्डित ओझा जी ने अम्भोवाद नामक स्वतन्त्र ग्रन्थ में तीन अधिकारों में अनेक अधिकरणों में इसकी व्याख्या की है। सृष्टि की व्याख्या में पूर्वोक्त वादों की अपेक्षा यह वाद अधिक गहन है।

सातवाँ वैदिकवाद अमृतमृत्युवाद है। यह सृष्टि को नाशवान् और अनश्वर—दो तत्त्वों से बना हुआ मानता है। एक जो जन्मता, मरता रहता है, वह यह मृत्यु कहता है। जो तत्त्व नित्य है, उसे अमृत कहता है। परिवर्तमान और शाश्वत तत्त्व के द्वैत में सृष्टि है। भौतिक और अभौतिक—समस्त सर्गों की यह इस आधार पर व्याख्या करता है। अमृत तत्त्व को वेद में रस कहा गया है और मृत्यु को बल। शाश्वत और नाशवान् एक – दूसरे में समाविष्ट रहते हैं।

आठवाँ वैदिकवाद अहोरात्रवाद अहः और रात्रि के द्वैत में सृष्टि को समझाता है। अहः और रात्रि इतनी व्यापकता में आते हैं कि पृथिवी रात्रि है और सूर्य अहः है। यह वाद प्रकाश पर आधारित है। प्रकाश की गति का अवरोध करने से पृथिवी रात्रि है। यहाँ सुखरात्रि, भूतरात्रि और शिवरात्रि का प्रतिपादन हुआ है। रात्रि को यह वाद प्रकृति मानता है और अहः को

विकार से उत्पन्न मानता है। अहोरात्रवाद बहुत महत्त्वपूर्ण वैदिक वाद है। ओझा जी ने इसे विस्तार से प्रतिपादित किया है। ज्ञान-अज्ञान, शुक्ल-कृष्ण वर्ण, प्रकाश-अन्धकार, भाव-अभाव, द्यावा-पृथिवी, स्थिर-चर, पृथ्वी-सूर्य, ऋत-सत्य के रूप में अहः और रात्रि की व्यापक मीमांसा यहाँ है। अहोरात्रवाद वैदिक यज्ञवाद है। हमें यह प्रतीत होता है कि रजोवाद, अम्भोवाद और अहोरात्रवाद—इन तीन वादों में सृष्टिप्रक्रिया का विशद प्रतिपादन है और इनके गम्भीर अध्ययन से हम वेदार्थ के अधिक निकट पहुँच सकते हैं। इन तीन वादों को, इनमें भी रजोवाद और अहोरात्रवाद, इन दोनों में भी अहोरात्रवाद वैदिक सृष्टि प्रक्रिया की सबसे बड़ी व्याख्या है। सिद्धान्त के रूप में निश्चित ब्रह्मवाद सम्भवतः इन वादों के साथ ब्रह्म को प्रतिष्ठित करने से प्राप्त होता है। चूँकि अहोरात्रवाद यज्ञवाद होने से कर्म या कार्य ब्रह्म तक व्याप्त होता है, अतः वह सिद्धान्त नहीं है।

नौवाँ वाद दैववाद है। ऋग्वेद में बृहदुक्थ ने इसका प्रतिपादन किया है। इसका मूलसूत्र है—

यदस्ति किञ्चित् सकलं हि दैवाधीनं सदाकस्मिकमेव मन्ये।
भवन्ति जीवन्ति तथा म्रियन्ते दैवादिति प्राग् बृहदुक्थ ऊचे।।[5]

बृहदुक्थ की ऋचा है—

विधुं दद्राणं समने बहूनां युवानं सन्तं पलितो जगार।
देवस्य पश्य काव्यं महित्वा अद्या ममार स ह्यः समान।[6]

सूर्य, चन्द्र, मिट्टी, जल सब कुछ दैव है।

दसवाँ वाद संशयवाद है। जगत् के स्वरूप को जानने के समस्त प्रयत्न सम्भावना पर आधारित होने से जगत्-कारण संशयास्पद हैं—

नाद्यापि निश्चित्य वदन्ति केचित् तदित्थमेवेति जगत्स्वरूपम्।
सम्भावनामात्रकृतं तदेषामुक्तं ततः संशयितं समस्तम्।।[7]

२

ये सभी वाद ब्रह्मा के जन्म से पूर्व साध्यों ने कहे थे। साध्यों का वेद में महान् ऋषियों के रूप में स्मरण किया गया है। ये वाद देवयुग तक प्रचलित रहे। बाद कोई ऋषि ब्रह्मवाद को प्रतिपादित करते हैं और ब्रह्मवाद के प्रतिपादक होने से वह ब्रह्मा कहलाते हैं। यह ब्रह्मवाद वेद का सिद्धान्त है। ब्रह्मा को परमेष्ठी और विश्वकर्मा कहा गया। दशों वैदिक वादों में द्वैत दृष्टि साधारण है। ये सभी सृष्टि की व्याख्या द्वैत में करते हैं, जबकि वेद की प्रतिपाद्य दृष्टि अद्वैत है और वही ब्रह्म है। पर और

अपर, सोम और अग्नि—ये सभी विभाजन वास्तव में नहीं है। वास्तव में तो एक ब्रह्म है। वन भी ब्रह्म है और वृक्ष भी ब्रह्म है। वृक्ष और वन का द्वैत वास्तव में नहीं है, यह सिद्धान्त है—**ब्रह्म वनं ब्रह्म स वृक्षः**[8] (तैत्तिरीय ब्रा.२.८.९)

नासदीय सूक्त में सात मन्त्र हैं। इन्हीं में दशों वाद और सिद्धान्त हैं। दशवाद रहस्य में इन मन्त्रों का अनुवाद करते हैं। उस अनुवाद में ओझा जी द्वारा प्रतिपादित ब्रह्मसिद्धान्त संक्षेप में आया है। विस्तार से उन्होंने ब्रह्मसिद्धान्त नाम से ग्रन्थ में लिखा है।

अपरवाद, आवरणवाद आदि तो बहुत स्थूल बुद्धि विज्ञान हैं, किन्तु रजोवाद और अहोरात्रवाद जैसे महान् वैदिकवादों में भी सृष्टि की सही व्याख्या क्यों नहीं है अथवा इन वादों का निरास ब्रह्मवाद किस तरह करता है तो उत्तर यह है कि अग्नि-सोम, रज- परोरजा, पर-अपर, अहः –रात्रि, आभु और अभ्व—ये वस्तुतः दो नहीं है और इनके मध्य भोक्ता-भोग्य भाव नहीं है। सृष्टि में परस्पर सहकार और सहभाव है, क्योंकि वस्तुतः वह अनेक न होकर एक है। ओझा जी का मत है—

ब्रह्मैव देवाँस्तु वितत्य देहे सर्वं यथा चालयतीह तन्त्रम्।
तदुक्तमाथर्वणसंहितायां सूक्ते द्वितीये दशमे तु काण्डे।।[9]

सन्दर्भ -

१ दशवादरहस्यम्, अपरवाद, यदृच्छावाद अधिकरण २-५
२ दशवादरहस्यम्, अपरवाद, यदृच्छावाद अधिकरण १
३ दशवादरहस्यम्, अपरवाद, प्रकृतिवाद अधिकरण, ७
४ दशवादरहस्यम्, अपरवाद, अम्भोवाद, २
५ दशवादरहस्यम्, दैववाद, ४
६ ऋग्वेद ८.१.१६
७ दशवादरहस्यम्, दैववाद, ६
८ तैत्तिरीय ब्रा.२.८.९
९ दशवादरहस्यम्, सिद्धान्तवाद, ४